कविता के पार कविता

❀ ❀

डॉ० सुरेन्द्र वर्मा

नव सहस्राब्दी को
समर्पित

कवितानुक्रम

कविता के पार कविता

परिवेश

एक वचन

परिशिष्ट

खण्ड-एक

कविता के पार कविता

एक

कौन है, आख़िर किसके लिए
खेलती है वह खेल
क्यों खेलती है ? और खेल भी
कैसे कैसे खेलती है कविता !

आकृतियाँ रचती है कविता
कविता प्राक्कल्पना है भविष्य की
वर्तमान पर सवाल उठाती
कविता झड़ी लगा देती है, प्रश्नों की

नारे लगाती है
अभिनय करती है कविता
पहेली बुझाती है
लतीफे गढ़ती है कविता

व्यंग्य करती, मुस्कराती
शरीर लड़की की तरह
खिलखिलाती है कविता

कविता प्रार्थना है, एक निवेदन है
अभिनंदन में उठा हाथ भी है
कविता धन्यवाद है
लेकिन कभी–कभार श्राप भी है

संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है
इच्छाओं का प्रतिवेदन है कविता
यह माना कि
हथियार का खेल भी खेलती है कविता
लेकिन खेलते हुए
क्या खेल होती है कविता ?

कौन है ? आख़िर किसके लिए
खेलती है वह खेल !

❑

दो

वह आदमी का सिर्फ एक पहलू नहीं है
माना, वह अनजाने और अंधेरे कोने में
कभी पड़ी रोती भी है
और उसकी कोई नहीं सुनता
सोच सोच कर वह उदास भी हो जाती है
लेकिन हिम्मत तो कभी नहीं तोड़ती

वह हर गलती और अत्याचार के ख़िलाफ
एक असरदार आवाज़ है
उसे कोई नहीं रोक सकता

उसके हाथ में कोड़ा है
और वह घोड़ा जो बेक़ाबू है
पीठ छीलने में उसकी
वह बाज़ नहीं आती

जाड़े में खुली धूप सी हँसती है
बरसात की बौछार में
बिछलती है
गर्मियों में पहले पहर सी
ठंडाती है
बेशक, मनोरंजन नहीं
वह राहत और सकून है

अपनी तमाम कमियों
और सीमाओं के बावजूद
क्षमता सम्पन्न
कविता एक संपूर्ण आदमी है

वह आदमी का सिर्फ एक पहलू नहीं है !

❑

तीन

उस दिन दाढ़ी बनाते समय
कविता की एक पंक्ति याद आ गई
और रेज़र रुक गया
सिहर उठा रोम रोम
और सारा चेहरा पुलक गया .....

मूक और अपरिभाषित
कोई हिम–खण्ड था छाती पर रखा हुआ
कविता की आँच में वह
धीरे धीरे पिघल गया

अनकहा दुःख वाणी में बदल गया ....

कितनी ही बहसें कीं
कितने ही तर्क काटे
हार–जीत होना सिर्फ कहने की बात थी
जिनके लिए लड़े हम जीवन भर
वे वहीं के वहीं रहे
डटे रहना मूँछों की शान थी ....

कविता की वह पंक्ति थी या जादू था
उनके तो रूप ही बदल गए
अलग अलग खड़े थे जो
अपरिचित और पराए से
समन्वय की डोर में
मुद्दे सहज ही जुड़ गए ....

कौन सा वह सुख है भाई
जो कविता में नहीं सभव है
कविता तो अपने आप में
एक आनंदोत्सव है .... ❑

चार

उसने हर बार हथियार चाहे
लेकिन बार बार
उसे एक मीठी झिड़क,
कि हट यार,
के साथ कविता थमा दी गई !

गेल–समान, वह
कविता को ही हथियार समझ बैठा
और हर बार
मात खा गया .... ❑

पाँच

जिस कागज़ के टुकड़े पर
कविता लिखी थी
अभी–अभी उसी की नाव बनाकर
बरसते पानी में
छोड़ दी है/अच्छी तरह जानता हूँ
नतीजा क्या होगा।

मोटी मोटी पानी की बूँदे
और तेज धार का वार
उसके अस्तित्व को गला देगा
लेकिन थोड़ी दूर भी बह पाना
एक बडा सुख है/कागज की नाव
और कविता के लिए
यही बहुत कुछ है ...

❑

छह

यह रिश्ता परस्पर नहीं है
कविता युद्ध हो सकती है
लेकिन
युद्ध कोई कविता नहीं है

युद्ध युद्ध है
और कविता का आकाश
मुक्त है ....

पेड की फुनगियों पर
या बंदूक की नोक पर
वह कहीं भी बैठ सकती है
कपास के खेत में

और बारूद के ढ़ेर में
वह समान खेल सकती है

लेकिन सिर्फ इसलिए
वह पेड़ की फुनगी
और कपास का खेत नहीं है
बंदूक की नोंक
और बारूद का ढ़ेर नहीं है
युद्ध,
कोई कविता नहीं है

❑❑

आवर्तित आस्था

एक

जलज़ले आते थे और बच्चे पूछते थे
यह पृथ्वी क्यों हिल रही है, माँ।
आँधियाँ चलती थीं और बच्चे डर जाते थे
हवा इतनी तेज़ क्यों चलती है ?
और कभी कभी नदी
अपने तटों को छोड कर
सडक पर क्यों बहने लगती है ?

डरी हुई तो माँ भी थी
लेकिन उसका एक ही जबाव था
ईश्वर,
उसी की सब माया है, मेरे बच्चे !

बच्चा बडा हुआ
भौतिक विज्ञान और प्रकृति विज्ञान के नियमों में
उसकी आस्था जागी
डर थोड़ा घटा
और ईश्वर की ज़रूरत थोडी कम हुई
और दिन–ब–दिन घटती ही चली गई .....

फिर एक दिन अपनी स्लेट पर से
ईश्वर का नाम ही उसने मिटा दिया
अब न डर था
न कोई संदेह !

लेकिन यह क्या हुआ ?
ईश्वर के साथ साथ प्रकृति भी मरती गई
इतिहास भी समाप्त हो गया
और विचारधारा का अंत हो गया

बचा नहीं लेखक तक
और बसंत खो गया !
पर बूढ़ा आदमी जब देखता है
कि सूरज आज भी पूर्व में ही निकलता है
या कि
चांद अपनी गति से
अब भी घटता—बढ़ता है
या कि,
कोई बच्चा शेष है जो बूढ़ों की तरह
बात नहीं करता
या कि
बूढ़े अब भी कहीं कहीं
इज्ज़त के हकदार बने हुए हैं
या कि
प्रेमियों के मन में अब भी एक
तड़प बाकी है
या कि ....
तब कैसे यकीन किया जाये
कि ईश्वर सचमुच मर चुका है !
बड़ा बूढ़ा कहता है
उसी के बल तो सबकुछ चल रहा है !

❑

दो

जब सभी दरवाज़े बद थे
उसने तुम्हारा द्वारा खटखटाया
और अपनी हारी हुई बाजी
जीतने के लिए
तुम्हें तुरुप का पत्ता बनाया !

तुमने तो सदैव सीखा है सहना
काम निकल आने पर धन्यवाद
न बनने पर उलहना
मूर्ख तो वैसे ही चमत्कृत था
किन्तु समझदार ने अपने आश्चर्य को
अक्ल का जामा पहनाया
वह तुम्हे ढूँढने चली
वो समझ के पार पाया !

लेकिन मैं जानता हूँ
तुम्हारी भी सीमाएँ हैं
आदमी से परे तुम तो परमात्मा हो
फिर कैसे आ पाते आदमी के काम ?

उसने भोंतेरे हथियार की तरह
तुम्हे छोड़ दिया
लेकिन बाज़ाफ्ता कार्यवाही
पूरी करने के लिए
तुम्हारी नब्ज़ देखी गई
और तुम्हे मृत घोषित किया

पर मुश्किल तो यह है कि तुम्हारा प्रेत
आज भी भटकता है
और वक्त–बे–वक्त
ठोकर खाया आदमी
आज भी उसी से डरता है !

तीन

मै जानता हूँ
इन दिनों बहुत निराश होगे तुम !

लोगों ने अपने मसीहा
चुन लिए हैं
और उनके हृदय में अब तुम नहीं हो
अकेले बैठे, उदास
तुम देखते ही होगे
कि वे कितने मतलबी हो गए हैं
कि उन्हें यह जानने की ज़रूरत नहीं रही
कि तुम्हारा मतलब क्या है ?

तुम्हारे सारे गुण
अब उनमें समाहित हैं
तुम्हारा ऐश्वर्य
तुम्हारा भय,
तुम्हारा साम्राज्य
उन्होंने छीन लिया है
और अकेला, नग्न, वे तुम्हें
छोड़ गए हैं
लेकिन फिर भी कोई विश्वास है
कि नहीं मरता
तुम्हारे जड़ हो जाने के बावजूद भी
जो नहीं मरता

❑

चार

कितनी ही परिभाषाएँ पढ़ीं
कितने ही पीर और पैग़म्बरों के पास भटका
मंदिरों, मस्जिदों और गुरुद्वारों में माथा टेका
लेकिन तुम अनजाने ही बने रहे !

फिर छोड़ दिया सबकुछ

सहज ही ग्रहण किया
जो कुछ आया
सहज ही त्याग दिया
जो नहीं आया
और एक दिन तुम
सिरहाने बैठे मिल गए !

□□
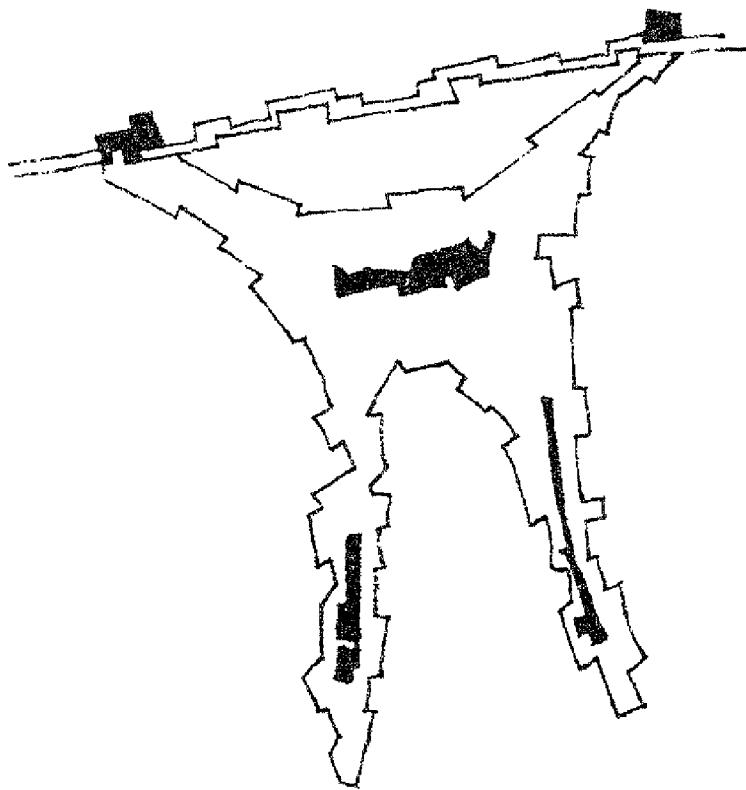
सब स्वर लौट आते

वहाँ बुद्धि काम नहीं करती
और सारे तर्क धरे के धरे रह जाते हैं
न सुगंध है, न दुर्गन्ध
न सर्दी, न गर्मी
न शब्द, न रूप, न रस, न स्पर्श है वहाँ

वह अकेला
अशरीरी
अजन्मा
चिर चैतन्य
वह न दीर्घ है, न ह्रस्व, न वृत्त, न त्रिकोण
चतुष्कोण भी नहीं, न परिमंडल

कृष्ण, नील, लाल या पीत भी नहीं
न ही धवल, सफेद
न तिक्त, न कटु, न कषाय, न अम्ल
न मधुर ही है वह
न कर्कश, न मृदु है
न गुरु न लघु है
न ही स्निग्ध, या रुक्ष
स्त्री भी नहीं, पुरुष भी नहीं
न ही नपुंसक है ....

वह अनुपमेय
अमूर्त, पदातीद है, वीत है
रीता नहीं, रीतता नहीं
संपन्न, संपूर्ण है.
वहॉ से अपंग, तभी तो,
सब स्वर लौट आते हैं .... ❑

वह तो स्वयं तू है

चिड़ियों का, पशुओ का
गैरों का, अपनों का
कितनों का हनन किया
        मनन किया पर कभी ?
सभी के हनन में तूने
अपना ही तो हनन किया ।

कितनों को अधीन किया
बनाया गुलाम अपना
अपनी ही आज्ञा में रक्खा
कितनों ने डर से, भय से
तूने जो कहा, वही किया
        पर क्या कभी सोचा तूने
गलत किया जो भी किया
और इस करने में बार बार
अपने को ही ग़लत किया ।

कितनों को परिताप दिया
कष्ट दिया, दुःखी किया
        क्या कभी सोचा किन्तु
अपना सुख पाने को
कितनी बार तूने
खुद को ही दुःखी किया !

योग्य जिसे मानता परिताप के
योग्य जिसे मानता दासत्व के
हनन के मानता है जिसे योग्य
वह तो स्वयं तू है !
झाँक कर,
        देख तो —
                भीतर ❑

ओ मेरे दिगम्बर मन

एक

जब पूरी तरह
आसक्ति विहीन हो जाता है व्यक्ति
किसे रहती है परवाह
अपने शरीर की ऐसे मे !
कपड़े पहनना
न पहनना
बेमतलब हो जाता है
मुनि वस्त्र धारण भी करे,
तो भी
दिगम्बर ही रहता है !

❑

दो

बेशक
नवजात शिशु भी
नग्न ही था
परन्तु आत्ममुग्धा की तरह
इसका पता ही न था, उसे !

पर जानबूझ कर
पूरे होशो–हवास में
उसी सहज अवस्था में पहुँच जाना ?
दिगम्बर होने के लिए
कितना ज़रूरी है
पहले चिदम्बर हो पाना !

❑

तीन

हॅस सकते हैं लोग
पत्थर भी फेंक सकते हैं
पर जब अपने शरीर की ही
मूर्च्छा न रही
तो कौन फिक्र करे
उन मूर्छित लोगों की
जिन्हें पता ही नहीं कि वे
        क्या करते हैं ?

दिगम्बर हो जाना
कोई खेल नहीं है। ❑

चार

वो जो सारे अभावों से मुक्त है
ओर खुला आसमान
जिसका घर है
वो जो न विक्षिप्त है
न विवर्त है
        ऐसा सहज चिन्मय ही
अनासक्त है

जब कोई ऐब नहीं है
तो बतलाओ भला
        ढकने के लिए
शेष क्या रहा ❑

पाँच

कौन किसका भाई
और कौन किसकी बहन है

कैसा परिवार
और किसका वंश है ?
दिगम्बर तो
परम हंस है !

❑

छह

जहाँ शील–अश्लील के प्रश्न
बेमानी हैं
जहाँ राग और विराग
परस्पर
सृजन करते हैं संगीत का
जहाँ भीति के परे है – प्रीति
नेह के ऐसे प्रदेश में
ले चल
ओ मेरे दिगम्बर मन !

❑ ❑

खण्ड-दो

परिवेश

एक

अनुकूल होती है
तो कभी हमारे खिलाफ भी उठ सकती है
हवा पर भरोसा मत करो !
जरूरी नहीं
कि हम उसके इशारे पर हमेशा चलें
उसके रुख़ को देखकर
अपनी दिशा निर्धारित करें

पर बीचोंबीच
अडिग खड़े रहना/और उसे
विपरीत दिशा में

बहते हुए देखने से भी
हवा को सदमा पहुँचता है ...

बर्दाश्त नहीं कि कोई चुनौती दे
उसके वजूद को
लेकिन खड़े रहो और डटे रहो
हवा हो जाती है
घोड़े पर सवार जो आती है .... हवा !

❑

दो

आखिर धारा को भी
एक ज़मीन चाहिए
ज़मीन
जो नदी के साथ बह न जाए
उसे बहने दे
और तारों को भी
एक आकाश चाहिए
आकाश
जो उन्हें स्वतंत्र और विलक्षण बनाए
खुद अपना वजूद खोकर
उन्हें रातभर चमकाए
ज़मीन तो ज़मीन है ही
लेकिन ज़मीन खुला आकाश भी होती है
और यही वह ज़मीन है
जो जमीन की भी ज़मीन होती है

❑

तीन

अंदर की हो या बाहर की
इच्छाओं या कामनाओं में हो

या आत्मा में
आग को प्रज्जवलित रख पाना
        कोई हंसी खेल नहीं है
और उसे काबू में रख पाना भी
        एक कौशल और शिल्प है !

कौशल,
जो आग को स्वतंत्र करता है
        उजाले के लिए
और शिल्प
एक ऐसा जो रोकता है
स्वेच्छाचारिता को उसकी

आग ने कब देखा
कि कौन जला
आग तो अंधी है
लेकिन देती है दृष्टि कि हम देख सके
        उसके उजाले में
आग ने कब चाहा कि वह
लपट न बने
लेकिन कई बार वह
सिर्फ सुलगती रही है
        फिर भी
लपट और आग समावेशित हैं
        एक दूसरे में
आग का लपट हो जाना ही
आग की पहचान है
सुलगती आग में राख न बनो
आग को उसकी पहचान दो
        छुओ मत

आग को सिर्फ महसूस करो
और पिघलने दो बर्फ उसकी ऊष्मा में
आग करुणा है
        दुःख है आग !   ❑

चार

पानी,
चाहे आँख का हो
या समुद्र का
प्यास नहीं बुझाता
पलकों में,
तटों में मर्यादित
        वह आत्मकेंद्रित है
पानी,
जो फूटता है झरनों में
पानी
जो बहता है नदियों में
पानी,
जो बादलों से मुक्त होकर
बरसता है धरती पर
        कभी प्यासा नहीं रहता
न रखता है कभी प्यासा
पर पानी से भरपूर
आँख और समुद्र
        दोनों ही प्यासे
            बेचारे ....   ❑

पाँच

जब तक क्षितिज नहीं देखा था
और जबतक पंख पसारे
ऊपर उड़ती हुई चिड़िया पर

नजर नहीं पडी थी
और जब तक अंधेरी रात मे
किसी तारे का टूटना नहीं जाना था
और जब तक सन्नाटे में
दिशाओं को चीरती कोई चीख़
नहीं गूंजी थी
और जब तक गंधराज की
भटकती हुई महक ने
नासाग्र को स्पर्श नहीं किया था
किसने जाना था
कि आकाश भी है / तुम्हीं बताओ
कब आग्रह किया था आकाश ने
कि कोई उसे देखे !
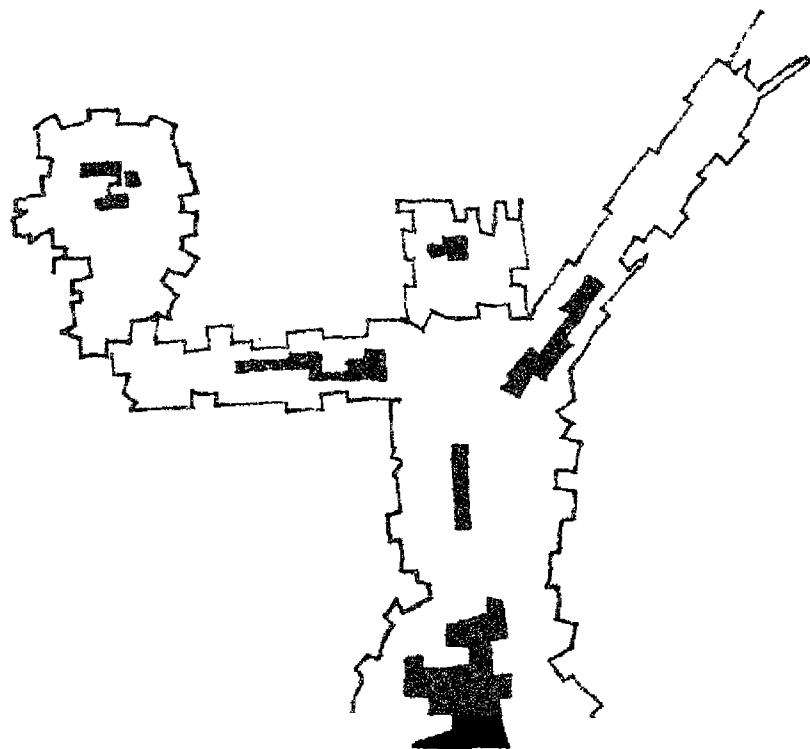
तकलीफ़ की इबारतें

एक

गुलाबो छब्बीस बरस की
एक युवती नहीं थी
उदासी की एक तस्वीर थी
पत्थर कूटती थी इस उम्मीद में,
नहीं, नहीं, इस ज़िद में –
कि पत्थर, पत्थर दिल नही होता
कूटो तो रोटी देता है
दो जून की
वज़ीरपुर की झुग्गी–झोंपडियो में बसी
गुलाबो ने अपनी ज़िद नहीं छोड़ी
और वह उदास होती गई
पास पड़ी दो साल की बच्ची का
रोना, अनसुना करती गई
न टूटने वाले पत्थर जो तोड़ती थी
गुलाबो
फिर न जाने क्या हुआ
नहर में कूद गई गुलाबो
और अपनी जान दे दी
अपनी दो वर्षीय बच्ची के साथ !

पुलिस रिकॉर्ड में यह मामला
आत्महत्या का है
जिसकी वजह

उदासी का दौर था ....
रिकॉर्ड यह नहीं बताता
कि एक मेहनतकश औरत ने
अपनी उम्मीद
पत्थरों से बाँधी थी
और टूटती चट्टानों पर
उसने अपने आँसुओ को
अंकित करने की नाकाम कोशिश,
— नहीं, नहीं — ज़िद की थी
बजीरपुर की झुग्गी–झोपड़ियों में बसी
गुलाबो ने अपनी ज़िद नहीं छोड़ी
आख़ीर तक

❑

दो

उन्नीस साल की मैना ने
खुदकशी क्यों कर ली ?
पता है आपको ?

वह बीमार नही, स्वस्थ थी
तन से भी और मन से भी
लेकिन उसका पति
रुपए पाँच का कर्ज़दार था !

पैसे न भी दिए तो क्या हो जायगा ?
पडोसी पर कोई
आसमान तो नहीं गिर जाएगा ?
सोचता था उसका निठल्ला पति ।
कैसे हैं, ये पति–पत्नी
जिनकी पाँच टके की हैसियत नहीं
बोलता था पड़ोसी

बेचारी मैना
जो बंधी थी पुराने ख़्याल से
और जो बधी थी
नए ख़्याल के अपने पति से भी
झेल नहीं पायी पति का सोच
और पड़ोसियो के बोल
लड पड़ी पति से !
पड़ोसियों की झिड़कियाँ तो
एक बार सुन भी ले
लेकिन फबतियॉ पति की ..

फफक उठी मैना
पाँच टके की मैना !
उन्नीस साल की मैना ने
खुदकशी क्यों कर ली
पता है आपको ? ❑

तीन

मैने कभी मॉ से पूछा तो नही
लेकिन उनके चेहरे पर, बेशक
इबारत तकलीफ़ की ही थी

शाम को माँ
जब अँगीठी में बुरादा भरती थी
मैं पूछता था,
चूल्हा क्यों नहीं जलाती हो, माँ !
लकड़ी की आग की तो
लपट ही दूसरी होती है !
मानती हूँ,
कि लकड़ी का बुरादा बेचारा
जलती लकडी की लपट नहीं देता

लेकिन आग, मेरे बेटे
बुरादे की भी कम नहीं होती
बुरादा तो
चिरती हुई लकडी का दर्द है, मेरे लाल

मैने कभी माँ से पूछा तो नहीं
लेकिन उनके चेहरे पर, बेशक
इबादत तकलीफ़ की ही थी ❑

चार

माँ के पेट में दर्द है !
डाक्टर कहता है अस्पताल का
यह दर्द ऐसा-वैसा नहीं है
तस्वीर लेने पड़ेगी पेट के अंदर की
शहर जाकर !

तू खाँमखा परेशान होता है, मेरे लाल
तू तो बस अस्पताल से
गोलियाँ ले आ
दो-चार रोज़ खाऊँगी
आप ही ठीक हो जाएगा

दर्द अच्छी तरह जानता है
चोचला बनकर वह यहाँ
ज्यादा दिन टिक नहीं सकता !

माँ की बात
सोलह आने सही निकली
दर्द टिक नहीं पाया
माँ के साथ वह भी जल्दी ही चला गया
शहर का अस्पताल और बिना देखे
तस्वीर पेट की
मा को अपने दर्द से निजात मिल गई

❑

पाँच

साँझ गए
जब पिता काम पर से लौटे
उनके चेहरे पर उदासी थी
दीवाल के सहारे
चप्पल उतारते हुए
उन्होंने माँ से कहा – आज भी नहीं
काम आज भी नही मिला
माँ चुप रहीं
मुझे बुलाकर बोलीं
जाओ, लाला की दुकान से
आधा सेर आटा ले आओ
आज अपन लपसी बनाएँगे
आटा लेते हुए
मा ने मेरी आँखों में
ज़रूर झाँका होगा
तभी वो बोली –
क्या बात है, बेटे ?
कुछ नहीं,
लाला कह रहा था
कल पैसे नहीं लाए
तो आटा उधार नहीं मिलेगा
पिछले चुकता कर जाना
तब आगे माँगना
ठीक है, ठीक है
ईश्वर पर भरोसा कर, मेरे बच्चे ।

मुझे याद है
तब माँ ने भगवान का नाम लेते ही

अपनी आँख का
: था
और शायद उसी दिन से
ने डबडबाना
:या !

□□
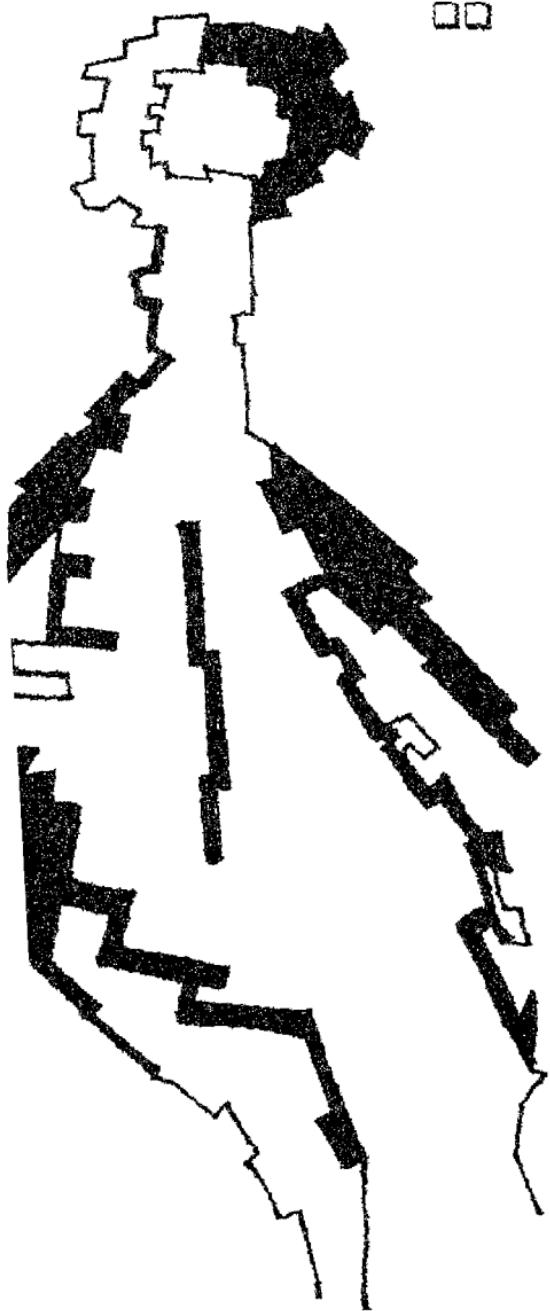
गवाहियाँ

एक

जी हाँ हुजूर,
उस चौराहे पर जहाँ यह दुर्घटना हुई
मैं ही तैनात था ....

मेरा नाम
कुछ भी हो सकता है
लेकिन उस समय मैं केवल सिपाही था
और सिपाही
अपनी वर्दी से जाना जाता है
नाम से नहीं !

मैंने साफ देखा था
कि सायकिल–वाला काफी रफ़्तार में था
और सीधे चलते चलते
वह एकदम मुड़ गया था
और मुड़ने के लिए न कोई इशारा था
न कोई मौखिक
या यांत्रिक सूचना ....

ये सायकिल वाले हुज़ूर
होते ही ऐसे हैं ...
जब चाहते हैं गाढ़ी से उतर जाते हैं
और रफ़्तार धीमी कर देते हैं
और सड़क की बनावट
या उसकी भीड़ से
उतरने–चढ़ने या रफ़्तार से
उनका कोई सार्थक–संबंध नहीं होता
कभी कभी तो हुजूर

ये भीड़ भरी सड़क पर
सायकिल तेज़ कर देते हैं
और कभी सूनी सड़क पर
उसे टहलाने लगते हैं ....

उस दिन भी जनाब
कुछ ऐसा ही हुआ था
कि सायकिल वाला सीधे चलते चलते
एकदम मुड़ गया था
कार रफ़्तार मे थी, और टकरा गई

कार की तेज़ी का भला
सायकिल क्या मुक़ाबला करती
और वही हुआ जो होना चाहिए था

जी हाँ हुज़ूर
उस चौराहे पर जहाँ यह दुर्घटना हुई
मैं ही तैनात था !

दो

इस कस्बे का मैं एक आम आदमी हूँ
इतना साधारण कि कार क्या
मेरे पास सायकिल भी नहीं है ....

यह तो महज़ इत्तिफाक़ है
कि उस दिन कार और सायकिल
की टक्कर के बीच
मैं स्वयं को साफ बचा ले गया

हुज़ूर, वह कार की टक्कर क्या थी
जैसे किसी गुस्सैल औरत का तमाचा हो
और जैसे नादान बच्चे का गाल

लौट जाय कि नाजुक
सायकिल के पहिए का
रुख पलट गया था
ठीक ही कहा है
कि कार की तेज़ी का
सायकिल भला क्या मुक़ाबला करती !

लेकिन हुज़ूर,
सड़क तो सबके लिए है
पैदल और सायकिल वालों के लिए भी
वह उतनी ही है जितनी
कारवालों के लिए है ....
फिर भला यह कब तक चलेगा
कि कार सायकिल को
और सायकिल पैदल को
टक्कर मारती रहे
कि सायकिल की थोड़ी रफ्तार भी
कार को गवारा न हो !

बात आई तो बता दी,
मुझे किसी की रफ्तार से भला
क्या लेना देना है ? मैं तो
इस कस्बे का एक साधारण आदमी हूँ
इतना साधारण कि कार क्या
मेरे पास सायकिल भी नहीं है।

तीन

कार के पीछे मेरी कार थी
और मैं ही जानता हूँ
कि किस होशयारी से मेरे ड्राइवर ने

वक़्त रहते उसे रोक लिया
नहीं तो एक और टक्कर
लगभग सुनिश्चित बात थी ....

आपतो जानते ही हैं
कि जब कार सायकिल से टकराती है
तो नुकसान ज़्यादह नहीं होता,
कार को बस खरोंच आती है
और सवार मय सायकिल के भी
उतना क़ीमती नहीं होता
जितनी कार होती है
लेकिन कार का कार से टकराना
कोई मामूली बात नहीं है
मेरी आँखे मुझे धोखा नहीं दे सकतीं
मैं भला किसी को दोष क्यों दूँ
लेकिन ग़लती तो सरासर
पुलिसमैन की ही थी
जिसने न सायकिल को रोका
न कार को ही सही हाथ दिया !

सायकिल की सही दिशा तो
मैं नहीं बता सकता
क्योंकि मेरी कार के आगे कार थी
और उससे परे देखने की
मेरी सारी कोशिश बेकार थी

वह तो वक़्त रहते
मेरे ड्राइवर ने कार रोक ली
वरना एक और टक्कर
लगभग सुनिश्चित बात थी।

चार

ज्यादह सोचना ख़तरनाक है जनाब,
सड़क पर ऐसे हादसे होते ही रहते हैं
कोई नई बात नहीं है ....

सड़कें हैं
तो दोराहे और चौराहे भी हैं
जहाँ परस्पर विरोधी दिशाएँ
एक दूसरे से मिलने को आतुर हैं !

कोई नहीं जानता
कि सड़क हमें कहाँ ले जायगी
और उस पर हमें
किस वाहन और किस रफ़्तार से चलना है ?
सबकी अलग अलग गति
और गाड़ियाँ हैं
ग़लत न पैदल है, न कार
न सिपाही, न सायकिल का सवार
गलत सिर्फ चौराहा है !
चौराहा,
जहाँ परस्पर विरोधी दिशाएँ एक दूसरे से
मिलने को आतुर हैं
और जहाँ सड़क बंद है !
चूहे अंधी-गलियों में
दौड़ने के लिए मजबूर है
और जिसे हम दुर्घटना कहते हैं
वह कम न ज़्यादह
सिर्फ एक घटना है !

मैं कोई नेता नहीं

सिर्फ एक सेवक हूँ, और
बरसों से जनता के बीच
उसके दुःख–सुख में साथ रहा हूँ
इसीलिए जानता हूँ –
ज़्यादह सोचना ख़तरनाक है जनाब
सड़क पर ऐसे हादसे होते ही रहते हैं
कोई नई बात नही है !
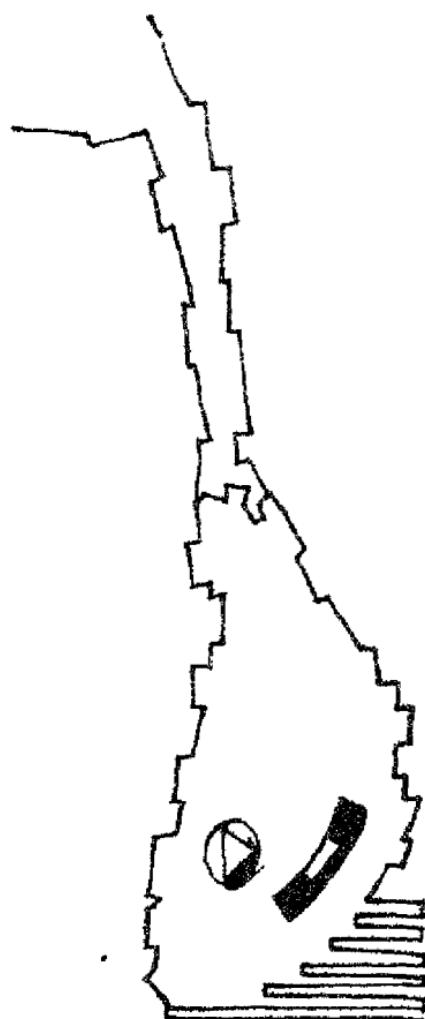
अभय-दान

जब प्राण निकल जाते हैं
तो हम देह से डरते हैं
हम वर्दी से भी डरते हैं
क्योंकि उसके पीछे आदमी नहीं होता

वर्दी, पहनने वाले से
कहीं ज्यादह प्रभावक है
वह गाली बक सकती है
और पत्थर फेंक सकती है
बकती है
फेंकती है ....
वह लाठी
गोली की तरह मारती है
और बंदूक
लाठी की तरह चलाती है
वह गोली को
गोली की तरह मार सकती है
और लाठी को
लाठी की तरह चला चकती है
लेकिन ऐसा बहुत कम होता है
क्योंकि इससे वर्दी का प्रभाव
घटता है
कलफ़ नरम पडता है ....

हमने अपने सब काम
वर्दी के हवाले कर दिए हैं
वर्दी की देख–रेख में
हम अनाज खरीदते हैं

और आँख बचते ही
क़तार तोड़ देते हैं
वर्दी कहती है
तो हम कॉलेज जाते हैं
वर्दी कहती है
तो हम घर पर बीवियों से
मुँह–जोड़े बैठे रहते हैं

वर्दी के हाथ बहुत बड़े हैं
और उसकी जेब इतनी लंबी है
कि उसमें छोटा आदमी नहीं बैठ सकता
इसलिए हर बड़ी जेब में
एक बड़ा आदमी बैठा है
और छोटे आदमी वर्दी के चारों तरफ़
लिलीपुट बनाए हैं ...

मैं न छोटा आदमी हूँ
न बड़ा
इसलिए हे भगवान
मेरे प्राण ले लो
वर्दी बनाकर मुझे
अभय–दान दे दो !

❑

आख़िर कब तक ?

हमारे मसूड़ों में
दाँत उभर आए हैं
लेकिन स्तनों से
चिपके रहने की कामना
मरी नहीं
उसके स्तन
सूख चूके हैं
और छाती से चिपक गए हैं
फिर भी कोई सुख है
जो स्तनपान करने को
आतुर है
और न हम उसे छोडते हैं
न वह हमें
ज़ोर से चूसते है
दूध नहीं निकलता
खून की शायद कोई बूँद
स्वाद ख़राब करती है
वह चीख़ती है
एक करारा तमाचा जड़ती है
और हमारे अँगूठे
मुँह में ठूँस देती है
वह माँ हो, या शासन, या व्यवस्था
चाहते हुए भी
कब तक हमें छाती से चिपकाए रखेगी ?
कबतक बार–बार
हम उसके तमाचे खाकर
अपने अंगूठे चूसते रहेंगे
आखिर कब तक ?

❑

अंधेरे को अंधा न समझो

एक

जहां जहाँ
रोशनी की सन्ध है
अजगर सा पड़ा अंधकार
उसे ताकता है
बेलाग और ख़ामोश
अपने आगोश में
धर दबाने के लिए,
उसने अपनी बाँहें खुली छोड दी हैं
और उसकी आँख
अवसर की तलाश में है
कि प्रकाश कब झपकी ले
और वह झपट पड़े ..
अंधकार मौका नहीं चूकता
उजाले से जूझता है
अंधेरे को अंधा न समझो

❑

दो

दुःसाहसी अंधेरा नहीं काँपता
काँपती तो दिये की लौ है !
कितना कठिन है
(ठीक अंधकार की तरह)
अपनी लौ को अविचल रख पाना
किसी नन्हें दिये से पूँछो !

❑❑

ज़रा देखो इस फूल

एक

रजनी गंधा
अपने शतशत हाथ ऊपर उठाए
सावधान खड़ी है
कि आसमान कभी गिर ही पड़े
तो उसे संभाल पाने वाला
कोई तो हो !

❑

दो

ज़रा देखो तो इस फूल को !
मानो उत्साह से लबरेज़
एक पक्षी
स्वर्गाकांक्षी
अपनी टहनियों पर इतराता हो
पीले और लाल रंग की चोंच लिए
मानो उड़ जाने के लिए
तैयार बैठा हो –
यह जानते हुए भी
कि शाख से टूटा नहीं, झर जायेगा

पर यही फूल
एक उम्मीद भी जगाता है
कि आसमान कभी रिक्त हुआ
तो सबसे पहले
यही उसे भरेगा
अपनी उड़ान
और अपने रंग से !

❑

खण्ड-तीन

एक वचन

नई पीढ़ी का गीत

मुझे आने वाली पीढियों की
दुहाई मत दो।
मैं पल–पल जीता हूँ
और हर क्षण भोगता हूँ
और जीने और भोगने के बीच
मैं हर घड़ी
मृत्यु का मेहमान होता हूँ
मुझे आनेवाली पीढ़ियों की
दुहाई मत दो
बीता हुआ कल
एक टूटी हुई साँस है

और आने वाला
केवल एक आस है
मृत्यु के दो पाट बीच
स्पन्दित आज है !
मुझे उतरती हुई सीढ़ियों की
दुहाई मत दो।
बहुत तेज़ वेग है
पाँव नहीं रुकते हैं
समुन्दर के जोश से
किनारे हिलते हैं
जिन्दा बस पानी के
बहते हुए कतरे है !
मुझे चमकती हुई सीपियों की
दुहाई मत दो।
मुझे चमकती हुई सीपियों की
और उतरती हुई सीढ़ियों की
और आने वाली पीढ़ियों की
दुहाई मत दो।

तुम्हारा गणित

मुझे तुम्हारा गणित पसंद नहीं आता
जो एक और एक जोड़कर
दो कर देता है ....
मुझे तो अपने दोस्त का
वह हाथ पसंद है
जो सहज मेरे हाथ से जुड जाता है
और मैं पहचान नहीं पाता
कि उसकी उँगलियाँ मेरी हैं
या मेरी उसकी
यह उन दो हथेलियों का दबाव है
जो भटकती हुई आस्था को
पुनर्स्थापित कर जाता है ....

मुझे तो अपनी प्रिया की
वह बात पसद है
जो सहज मेरी बात से जुड़ जाती है
और मैं पहचान नहीं पाता
कि उसकी दृष्टि मेरी है
या मेरी उसकी
यह उन दो निगाहों का उजाला है
जो भटकते हुए प्यार को
विश्वास दिला जाता है ....

मुझे तुम्हारा गणित पसंद नहीं आता
जो एक और एक जोड कर
दो कर देता है ....

❑

हरी चंपा और हम

निभाए अस्तित्व अपना
हम छिपे है पत्तियों की भीड़ में
अपनाए उन्हीं का रंग।

हरी चंपा
पंखुरी मोटी
तीखी गंध।

हम अलग ही फूल हैं ...
दूर से सूंघो हमें तो
हम नहीं हैं सूक्ष्म, भीनी महक
खींच ले जो सहज बरबस दृष्टि
है नहीं वह विविधवर्णी
लपलपाती लहक
हम स्थूल हैं ....

पत्तियों का सदा टटका दुःख
हरा हममें बना है
इसीसे तो गंध तीखी है
कहाँ से लाएँ
सुखद अनुभूति
हम परिवेश के अनुकूल हैं
निभाए अस्तित्व अपना

❑

यात्रा

मै रुकने या मुड़ने की बात
नहीं करता/मुझे जिस गुफा में
उतारा गया है
वह मुझे पार करनी है
कहते हैं,
गुफाएँ पार करने के बाद
रोशनी मिलती है
और अंधेरे की अभ्यस्त आँखें
चकाचौंध हो जाती हैं ...
मेरी आँखों को खुश होना चाहिए
कि वे प्रकाशित होंगी
लेकिन मेरे कानों में
उन तमाम दरवाज़ों की आवाज़ें
मौत की घंटियों की तरह
बज रही हैं / जो मेरे पीछे
एक के बाद एक बंद हुए हैं
और जिनके
हर नए धमाके से
दिल की धड़कन में फर्क आया है

मै हर नए मोड़ पर
अपने जूतों को साफ़ करता हूँ
क्योकि इतिहास से चिपटा रहना
मुझे क़तई पसंद नहीं
लेकिन ये आवाज़ें
मेरा पीछा नहीं छोड़तीं
फिर भी मुझे जिस गुफा मे
उतारा गया है

वह मुझे पार करनी है
मैं रुकने या मुड़ने की बात
नहीं करता। ☐

बर्फ

बर्फ
दर्द का जो एक टुकड़ा है
... गलने दो
मत रहो बाँधे
समझ कर व्यक्तिगत
अनुभूतियाँ अपनी
पथरा नहीं जाए कहीं
इनकी तरलता/इसलिए
बर्फ
दर्द का जो एक टुकड़ा है
... गलने दो
दो पर्वतों के बीच में है
मौन
कौन तोड़ेगा इसे ?
कौन सूनापन भरेगा मध्य अपने
सिवा आँसू के/इसलिए
बर्फ,
दर्द का जो एक टुकड़ा है
... गलने दो
जब सभी संबंध
ठंडे पड गए हों
और गलती उँगलियों मे
स्पर्श की अनुभूति

कुण्ठित हो गई हो / तब
बर्फ़,
दर्द का जो एक टुकड़ा है
... गलने दो ❑

रिक्तता

तब कितना
अकेला
महसूसता था

इतना बडा दालान
और इतने बडे बड़े कमरे थे
इनमें
इनमें कितना सामान सजाया
कुर्सियाँ
मेज़ें
पलंग और
फ्रिज
कबर्ड और
वार्डरोब
किताबें और
कपड़े
और हर ख़ाली जगह
और भरी जगह
ढकने के लिए परदे

दालान
कितना छोटा हो गया
और कमरे
सिकुड़ गए

लेकिन चीज़ों के बीच
आज भी
कितना अकेला महसूसता हूँ
और कितना
ख़ाली ❑

विज्ञप्ति

अब मैं क्या करूँ ?
नक़ाब,
जो मैंने कभी अनजाने चढ़ाया था
मेरा चेहरा बन चुका है
और मेरा कान
सच बात सुनने के लिए
बहरा पड़ गया है
कहावत तो ऐसी है
कि भला असलियत कौन छिपा सकता है
पर वह झूठ
जो सच बन चुका है
कौन भुला सकता है !
मुद्दत से ढूँढता हूँ
एक साफ सुथरा हाथ
और एक चेहरा पाक–साफ़
लेकिन हर मुखड़े पर मुखौटा चढ़ा है
और हर दूल्हे के सिर
कागज़ का फूल और
गोटा मढ़ा है
अपने तलाश की हार मानता हूँ
और यह विज्ञप्ति छापता हूँ
कि है कोई

बिना दस्ताने का हाथ
जो मेरा नक़ाब उतार सके
और मुझे सच से उबार सके
कि है कोई ?

अकिंचन

कब तक बिकूँगा / तुम्हारे बाज़ार में
कभी क़ीमती बनकर
कभी सस्ता होकर / कब तक
बडे और घटे दामों पर
खरीदा जावूँगा
वस्तु बनकर ?
मुझे अवस्तु ही रहने दो ।
मै हथियार नहीं बनना चाहता
तेज धार जो काटती है
कभी भौंतरी भी हो जाती है
कब तक सान पर चढ़ूँगा
अपने को बार बार
तुम्हारे किसी काम आने के लिए
मुझे निकम्मा ही रहने दो !

घटनाएँ
समय देखकर घटती हैं
बेवक्त नहीं होतीं
उनके स्थान सुरक्षित हैं
और पात्र निश्चित हैं
मै भला किस देश–काल का
और कौन कौन पात्रों का
मुँह ताकूँगा ?
मुझे अघटित ही रहने दो !
नाचीज़ हूँ,
मुझे अकिंचन ही रहने दो !

बिम्ब ही बिम्बित है

बहती नदी के
कितने रूप हैं / और हर रूप में
एक नदी है
नदियों में नदी / नदी
में नदियाँ हैं ....

समय की नाप
बहुत छोटी है
मिनट–घंटा / दिन–हफ्ता
माह–वर्ष
बूंद
        बूंद
                रिसता है
सदियों में पल/
पल में सदियाँ हैं ....

फूलों के खिलने में
कितने पराग झरते हैं
कितने पराग गुंफित हैं
फूलों के झरने में
कली कली फूल/
फूल में कलियाँ है ....

बिम्बों से
और और बनते हैं बिम्ब
बिम्ब ही बिम्बित हैं – वही हैं

बहती नदी के
कितने रूप हैं / और हर रूप में
एक नदी है

❑

कान धोखा नहीं खाता

बात बड़ी अटपटी लगती है
लेकिन प्रकृति मे भी
एक पद्धति है

घटनाएँ,
अलग अलग घटती हैं
लेकिन एक–दूसरे से
स्वतः कहीं जुडती भी हैं
विश्लेषण का अभ्यस्त मन
भले तार–तार कर दे
और संगीत को केवल आवाज़ कहे
पर कान धोखा नहीं खाता
वहाँ तो
स्वर–लहरी बजती है / जी हाँ
बात बड़ी अटपटी लगती है !

❑

अपनी ज़िन्दगी को

अपनी ज़िन्दगी को तीन जगह से काटता हूँ
एक, वृत्ति
जो भाव के वृत्ताकार में घूमती
और कर्म नहीं बनती

दो, कृति
जो अपने में सिकुड़ सिकुड जाती
और तुम्हें नहीं छूती

और फिर, श्रुति
जो चाहते हुए भी पी नहीं जाती
मुत्यु के तीन ख़ानों में बाँटता हूँ
अपनी जिन्दगी को

❑

प्रश्नवाचक चिन्हों के बीच

प्रश्नवाचक चिन्हों के बीच/मै
एक विराम बिंदु हूँ !

प्रश्न उठते हैं, गिरते हैं
और आगे बढ़ जाते हैं
पीछे हटकर
फिर फिर मुझसे टकराते हैं
निरुत्तर मैं किन्तु हूँ

सवालों का सिलसिला / कभी
ख़त्म नहीं होता / हर जवाब
कई नए सवाल बोता है
प्रश्न और उत्तर के बीच जो
वक्त गुजर जाता है / कुछ ऐसा
होता है कि सवाल उससे
बदल जाता है
उत्तर बेचारा बेमतलब हो जाता है

प्रश्न उठते हैं, गिरते हैं
और आगे बढ़ जाते हैं
पीछे हटकर
फिर फिर मुझसे टकराते हैं

वे क्रिया, श्रमरत है
और मैं विश्राम हूँ / उनकी
गति का मैं अधिष्ठान हूँ !

❑

नाभिक प्रकाश

मुझे तो उस केन्द्र तक पहुँचना है
जहाँ से प्रकाश आता है

फिर चाहे
अंधकार की अंधी गुफा में होकर ही
क्यों न गुज़रना पड़े

तुम मेरे सहज विश्वास को
न छीनो!
साफ नज़र का छलावा देकर
तर्क और वितंडा का दर्पण
मेरी दृष्टि पर
न चढाओ/क्योंकि
मुझे तो प्रकाशित विषय नहीं
नाभिक प्रकाश पाना है
जिसके लिए
आँख लपकती है
और स्वाद लपलपाता है

आख़िर वह है कहाँ
जो जुगनू की तरह
कभी कभी झिलमिलाता है
मुझे तो
उस केन्द्र तक पहुँचना है
जहाँ से प्रकाश आता है !

❑

अस्मिता

गॉठ खोल पाना
कोई सहज तो न था
लेकिन कठिन से मैं कब कटा
अपने पर गर्व रखा/किन्तु
एक एक रेशे के लिए
अलग अलग जूझना
मेरे धैर्य को चुनौती थी
जो तोड़ गई – तागे ....
जिन्हे जोड़ने के लिए
एक और गॉठ
और हर गॉठ के साथ
उसके न खुल पाने का
दुःख–भोग
कभी भय तो कभी क्रोध में पलायन
कितना आसान था
लेकिन
गांठ
खोल
पाना....

सूर्यास्त को भी प्रणाम

एक

कभी सोचता हूँ मृत्यु के बारे में
तो हर बार जीवन
सामने आ खड़ा होता है
और ढक लेता है उसे
अपने साये में
मृत्यु
कहीं जीवन की परछाँई ही तो नहीं है ?
कहीं मैंने ही तो उसे
एक स्वतंत्र वजूद नहीं दे रखा है ?
और व्यर्थ ही आ गया हूँ
उसके भरमाए में
कि सोचता हूँ बार–बार
बस, उसी के बारे में !

दो

शरीर की अभिव्यक्ति है जन्म
और मृत्यु विघटन है
दोनों ही ज़ंजीर के दो छोर हैं
एक सूर्यास्त
तो दूसरा भोर है
नमन करो बेशक
उगते सूर्य को
पर सूर्यास्त को भी प्रणाम करो
दोनों का ही अप्रतिम
अपना सौंदर्य है !

तीन

वाङ्ग और अवाङ्ग
प्राण के ही रूप हैं दो
एक करता प्रज्वलित
है भस्म करता दूसरा
पर राख ही करती नहीं है
आग
देती है उजाला, ऊष्मा भी
ऊर्ध्वगामी ऊर्जा है आग !
मृत्यु का पर्याय
मत समझो .... अवाङ्ग ❑

चार

भुला नहीं पाता उसे
तभी तो
मृत्यु से समझौता नहीं,
करता हूँ दोस्ती
मित्र की बाँह पकड़
चढ़ता हूँ सीढ़ी–दर–सीढ़ी ❑

पाँच

वह तो स्वयं ही
ज़िन्दगी से प्रकाशित है
और स्याह हाशियों की तरह
एक तरफ
धकेल दी गई है
फिर भी
छाँह में उसी की
पनपती है जिन्दगी

❑❑

परिशिष्ट

कविता की एक विशुद्ध भारतीय अवधारणा : अनासक्त कविता

कविता का स्वभाव क्या है ? क्या उसे परिभाषित किया जा सकता है ? कविता क्यों और किसके लिए लिखी जाती है ? उसका प्रयोजन और कार्य क्या है ? अपने कवि--कर्म मे क्या कवि की प्रतिबद्धता को सुनिश्चित किया जा सकता है ? आदि तमाम ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें कविता की अनासक्त धारणा कविता के सम्बन्ध में पूछे गये 'गलत प्रश्न' ठहराती है।

फिर भी, कविता आत्मानुभूति है शायद इसमें दो मत सम्भव नहीं हैं। किन्तु आत्मानुभूति का क्या अर्थ है यह विवादास्पद है। आत्मानुभूति को आत्माभिव्यक्ति भी कहा गया है। कविता, कवि की आत्मा की अभिव्यक्ति है क्योंकि वह स्वयं कवि को उद्घाटित करती है। अतः कविता को हम उसके कवि से अलग नहीं देख सकते। कविता और कवि अविच्छिन्न रूप से एक हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी कविता के रसास्वाद के लिए हमें यह जानना ज़रूरी है कि उसका कवि कौन है। जैसा कवि वैसी उसकी कविता। कुछ आलोचकों ने इस बात को बहुत गम्भीरता के साथ ग्रहण किया है और इसका परिणाम यह हुआ कि कवि एक व्यक्ति के रूप में प्राथमिक हो गया है और उसकी कविता गौण रह गयी है। इस प्रकार यदि आप किसी कवि को पसंद करते है तो उसकी कविता भी आपको पसन्द आने लगती है और यदि किसी अन्य को अस्वीकार करते हैं तो उसकी कविता भी नकारते हैं। आत्माभिव्यक्ति की यह एक अत्यन्त व्यक्तिवादी व्याख्या है जो प्रायः हमें पश्चिम से मिली है। कविता की इस व्यक्तिवादी धारणा के विपरीत कुछ लोगों ने (पुनः सर्वप्रथम

पश्चिम में ही) कविता को उसके कवि से न जोड़ कर, उसे साधारण व्यक्ति से जोड़ना चाहा है। कविता को आम आदमी से जोड़ने की प्रवृत्ति आज बड़ी आम बात हो गयी है। इस प्रसंग में कविता में प्रतिबद्धता के प्रश्न को भी बार बार उछाला गया है। अपने कवि–कर्म में व्यक्ति आख़िर किसके प्रति प्रतिबद्ध है यह एक अहम सवाल बन गया है। इसका एक उत्तर व्यक्तिवादी है जिसके अनुसार कवि और उसकी कविता अपने सिवा और किसी के लिए प्रतिबद्ध नहीं है। इसका विरोधी जनवादी मत कवि को समाज के प्रति, आम आदमी के प्रति प्रतिबद्ध करना चाहता है। मैं समझता हूँ कविता के सम्बन्ध में जनवदी–धारणा कविता और राजनीति में भेद करने में असमर्थ रही है। या, शायद कविता को राजनीति की तरह देखती है। जिस प्रकार एक कुशल राजनीतिज्ञ साधारण आदमी (अथवा जनता) के नाम पर अपने अहम के प्रति आग्रहशील होता है उसी प्रकार आम इन्सान के नाम पर एक चतुर कवि स्वयं अपने ही व्यक्तित्व को स्थापित करने का प्रयत्न करता है। राजनीति में 'जनता' तथा कवि–कर्म मे 'साधारण आदमी' का अर्थ एक ही है। इन दोनों ही पदों का प्रयोग बड़ी चतुराई से राजनीतिज्ञों और कवियों द्वारा स्वय अपने अहम् को पोषित करने के लिए किया जाता है।

वस्तुतः कविता के लिए यह प्रश्न पूछना बड़ा बेमानी है कि कविता किसके लिए लिखी जाती है। कविता स्वयं कवि अपने लिए लिखता है या आम आदमी के लिए ? कविता के विषय में यह प्रश्न स्वयं कविता के सम्बन्ध में सन्देह से जन्मा है। कविता बस कविता है। निष्काम–कर्म की तरह कविता भी अनासक्त होती है। वह किसी के लिए लिखी नहीं जाती और फिर भी सबके लिए लिखी जाती है। वह आत्म–प्रदर्शन अथवा अहम् पोषण के अर्थ में आत्माभिव्यक्ति न हो कर कवि के अहम् का अतिक्रमण कर जाती है और इस प्रकार वह अपने सभी पाठकों को उस बिन्दु पर जोड़ती है जहाँ सभी के

अहम् पिघल कर एक सार्विक अनुभूति से जुड़ जाते है। स्पष्टतः इस प्रकार की अनासक्त कविता सार्विक कविता है। ऐसी कविता साग्रह न 'व्यक्ति' के लिए लिखी जाती है न 'जन' के लिए और फिर भी अपनी अनुभूति में, स्वयं कवि के सहित, वह प्रत्येक व्यक्ति को जोड़ती है। इस प्रकार वह व्यक्ति और जन दोनों का ही पोषण करती है। अनासक्त कविता से लोकसंग्रह स्वयंप्रभूत है किन्तु लोकसंग्रह कविता का लक्ष्य नहीं हो सकता। जिस दिन लोकसंग्रह कविता का प्रयोजन बन जाएगा कविता सकाम हो जाएगी। तब कविता कविता न रहेगी। वह प्रचार का, आत्मप्रदर्शन का, अहम् पोषण का, एक माध्यम बन जाएगी। सारे कवि जो व्यक्तिवादी या जनवादी है अपने–अपने अलावों में अपने तुच्छ अहम् को सेंकते भर है वे कवि–कर्म के बजाय कविता में राजनीति बरतते हैं।

अनासक्त कविता कवि के एक व्यक्ति के रूप में वैशिष्ट्य को उजागर न कर उस सार्वभौम स्वभाव को उद्घाटित करती है जो प्रत्येक व्यक्ति की स्वानुभूति से अभिन्न है। यही कारण है कि कविता की अपील सार्विक है। किसी भी कविता की सार्विकता की मात्रा ठीक उसके कवि की स्वानुभूति के अनुपात में प्रकट होती है और यह स्वानुभूति अपने गुणात्मक रूप में एक दूसरे की आत्मानुभूति से अपृथक् है।

अनासक्त कविता इस प्रकार अघोषित रूप से स्वाग्रही भी है और लोकसंवर्धक भी किन्तु उसकी आसक्ति न व्यक्ति मे है और न समाज में। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति या समाज का हित अपने–आप में कविता का लक्ष्य नहीं हो सकता। ऐसा होने पर कवि का ध्यान कविता से हटकर काव्येतर विषय पर हो जाता है और तब कविता कुछ भी हो सकती है किन्तु कविता नहीं रहती। कविता का लक्ष्य अथवा साध्य स्वय कविता है वह किसी भी प्रयोजन का माध्यम अथवा साधन नहीं हो सकती। वास्तविक कविता निष्काम और अनासक्त है।

❑❑